डॉ0 राम विलास शर्मा की जन्म तिथि (10 अक्टूबर) पर विशेष

।।। मार्क्सवाद से सांस्कृतिक राष्ट्रवाद ।।।

(पश्चिमी एशिया और ऋग्वेद पर एक बातचीत)

वार्ताकार : डॉ0 धनंजय वर्मा, प्रभुदयाल मिश्र, श्याम कालिया, अभय अवस्थी ।

संयोजक– लक्ष्मीनारायण पयोधि

———

पयोधि– प्रख्यात मार्क्सवादी आलोचक डॉ0 रामविलास शर्मा की प्रसिद्ध पुस्तक : **पश्चिमी एशिया और ऋग्वेद** के सन्दर्भ में आयोजित इस बातचीत में आप सभी का स्वागत है । इस चर्चा में हमारे साथ हैं प्रसिद्ध नृतत्वशास्त्री श्री श्याम कालिया । आपने समाज–शास्त्र के क्षेत्र में काफी काम किया है । मानवशास्त्री के रूप में आपकी प्रसिद्धि है । समाजशास्त्र में श्री श्रीनिवासन के प्रसिद्ध सिद्धान्त ''सांस्कृतीकरण'' के समानान्तर आपका ''आदिवासीकरण'' याने ''ट्राइबलाइजेशन'' का सिद्धान्त बहुत चर्चित रहा है । इसके अलावा उर्दू साहित्य में आपकी गहरी रुचि है । आप गजलें कहते हैं और अंग्रेजी में भी आपने कवितायें लिखी हैं । कालिया साहब के अलावा हमारे साथ हैं श्री प्रभुदयाल मिश्र । आप वेदों के अध्येता हैं । संस्कृत साहित्य में आपकी गहरी पैठ हैं । ''सौन्दर्य लहरी'' का आपने अनुवाद किया है । उपनिषद् के कथात्मक संवाद पर आधारित आपका एक उपन्यास ''मैत्रेयी'' काफी चर्चित रहा है । वेदों के चुने हुए सूक्तों और मंत्रों का आपने काव्यानुवाद किया है । ''वेद की कविता'' के नाम से आपकी यह पुस्तक काफी प्रसिद्ध है । अंग्रेजी में ''गीता फार आल'' और ''द होली वेदाज फार आल'' भी आपकी चर्चित पुस्तकें है । आप दोनों के अलावा हमारे साथ है डॉ0 धनंजय वर्मा । डॉ0 वर्मा हिन्दी साहित्य के शीर्षस्थ आलोचक हैं । आपने अब तक बीस पुस्तकें आलोचना और रचनात्मक गद्य की लिखी हैं जो काफी चर्चित रही हैं । आप साहित्य में निष्पक्ष विवेचन और प्रखर आलोचना के लिए जाने जाते हैं । इनके अलावा हमारे साथ हैं श्री अभय अवस्थी । अवस्थी जी का परिचय दे रहे हैं श्री प्रभुदयाल मिश्र............

प्रभुदयाल मिश्र– श्री अभय अवस्थी प्रसिद्ध गांधीवादी विचारक हैं। आपने वेदों, शास्त्रों, पुराणों और भारतीय मनीषा का गहन अध्ययन किया है । यह विषय जो आज विचार के लिये हमारे सामने प्रस्तुत है, इसकी पृष्ठभूमि भी वस्तुतः उन्हीं ने गढ़ी है । आपने मिथकीय आधार पर भारत के इतिहास, भारत की भौगोलिक रचना और जो एक समग्र भारत की परिकल्पना हमारे अतीत में रही है, वर्तमान की आकांक्षा है, उसकी अनुभावना की है ।.........

पयोधि – बातचीत की शुरूआत कर रहे हैं डॉ0 धनंजय वर्मा

धनंजय वर्मा– सबसे पहले तो मैं इस पुस्तक को ''इंट्रोड्यूस'' करता हूँ । दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय से प्रकाशित डॉ0 रामविलास शर्मा की चार पुस्तकों की एक श्रृंखला का नाम है 'इतिहास और समकालीन परिदृश्य'। दस श्रृंखला की यह तीसरी पुस्तक है –''पश्चिमी एशिया और ऋग्वेद'' । पुस्तक के शीर्षक से ऐसा आभास हो सकता है, ऐसी धारणा बन सकती है, जिसका रामविलास जी ने प्रस्तावना में जिक्र भी किया है कि ऋग्वेद रचने वाले आर्य पश्चिमी एशिया से भारत आए । यह धारणा रही है कि आर्य इस देश के नहीं थे । वे दूसरी सहस्राब्दी ईसा पूर्व उत्तर पश्चिम से आये थे । इसका प्रत्याख्यान करने के लिए ही यह पुस्तक लिखी गई है । इसका मूल प्रयोजन, रामविलास जी के शब्दों में ''अतीत का वैज्ञानिक, वस्तुपरक विवेचन वर्तमान समाज के पुनर्गठन के प्रश्न से जुड़ा हुआ है ।'' इस विवेचन के केन्द्र में है आर्यो का भारत पर आक्रमण सिद्धान्त या सिन्धुघाटी की सभ्यता को नष्ट करनेवाले आर्यो की अवधारणा ! पुराकालीन या प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति के अध्येताओं के बीच प्रचलित इस सिद्धान्त और अवधारणा के परीक्षण, मूल्यांकन और उसका निराकरण करने के लिए ही यह पुस्तक लिखी गई है । पुस्तक में आठ अध्याय हैं । पहले अध्याय में भारत पर आर्यो के आक्रमण और सिन्धु सभ्यता को नष्ट करने वाले आर्यो की अवधारणा को रामविलास जी पुरातत्व की खोजों के द्वारा प्राप्त निष्कर्षो से रिफ्यूट करना चाहते हैं । दूसरे अध्याय में वे हडप्पा के केन्द्रबद्ध राज्यसत्ता और सुनियोजित अर्थतंत्र का बखान करते हैं । रामविलासजी मार्क्सवादी है और मार्क्सवादी चिन्तन में केन्द्रीय राज्यसत्ता और सुनियोजित अर्थतंत्र का केन्द्रीय महत्व है । इसके दर्शन उन्होंने हडप्पा सभ्यता में भी किए है । तीसरे अध्याय में पश्चिमी एशिया में आर्यो के प्रभाव विस्तार की कथा विस्तार से कही गई है कि कैसे उनकी संस्कृति, उनका चिन्तन, उनका देवतंत्र ही नहीं बल्कि मूर्तिशिल्प भी पश्चिम में फैलता गया । चौथे अध्याय में वे मिस्र, सुमेर और भारत के प्राचीन सांस्कृतिक सम्बन्धों का विवरण देते हैं और यह प्रमाणित करने की कोशिश करते हैं कि सुमेर से होते हुए मिस्र या फिर मिस्र से होते हुए सुमेर तक भारतीय सभ्यता और संस्कृति का विस्तार हुआ है और वह पहुंची उत्तरी तुर्की तक । पांचवे अध्याय में सरस्वती, भरत और जल–प्रलय पर विचार किया गया है और भरत नाम की जाति, क्लान या कबीला कैसे धीरे–धीरे पूर्व में पांचाल की ओर प्रस्थित होता है । छठवें अध्याय में देवतंत्र के विकास पर विचार किया गया है कि भारत में वह कैसे विकसित हुआ और फिर वह ईरान, ईराक कैसे गया । सुमेर और

मिस्र ही नहीं, यूनान, बेबिलोन और यूरोप तक उसका विस्तार कैसे हुआ ! सातवें अध्याय में वे उन सृष्टि कथाओं और दार्शनिक उद्भावनाओं का विश्लेषण करते हैं जो ऋग्वेद में आई हैं और वे किस प्रकार पश्चिमी एशिया की सभ्यताओं और संस्कृतियों को प्रभावित करती हैं । अंतिम अध्याय में अफ्रीकी–एशिया की प्रसार भूमि और ऐतिहासिक भाषा विज्ञान का विवेचन हैं । .....इस पुस्तक की एक और प्रेरणा मुझे लगता है कार्ल मार्क्स का यह विचार भी है जो पुस्तक में उद्घृत है ''हम निश्चय पूर्वक, न्यूनाधिक सुदूर अवधि में, उस महान और दिलचस्प देश को पुनर्जीवित होते देखने की आशा कर सकते हैं जहां के सज्जन निवासी, राजकुमार साल्तिकोव (रूसी लेखक) के शब्दों में इटालियन लोगों से अधिक चतुर और कुशल हैं, जिनकी अधीनता भी एक शांत गरिमा से संतुलित रहती है, जिन्होंने अपने सहज आलस्य के बावजूद अंग्रेज अफसरों को अपनी वीरता से चकित कर दिया है, जिनका देश हमारी भाषाओं, हमारे धर्मो का उद्गम है और जहां प्राचीन जर्मन का स्वरूप जाट में, प्राचीन यूनानी का स्वरूप ब्राह्मण में प्रतिबिम्बित है ।''.....मुझे लगता है कि मार्क्स के इस वाक्यांश (जिनका देश हमारी भाषाओं, हमारे धर्मो का उद्गम है) से रामविलासजी अभिभूत हो गए और उनमें अपने भारतीय होने, अपने आर्य होने का गर्व जागृत हो गया । इसका प्रमाण है यह पुस्तक ।..... लेकिन मार्क्स ने भारत पर एक टिप्पणी और की है । मुझे याद आता है इसी भोपाल में कलापरिषद् की छत पर एक गोष्ठी में श्री विजयदेव नारायण साही ने भारत पर मार्क्स की इस टिप्पणी पर सख्त एतराज करते हुए उसे अपमान जनक करार दिया था । मार्क्स ने कहा है ––''अजब है यह देश ! विलासिता के संसार और क्लेश के संसार के इस अनोखे मेल, अत्यधिक ऐन्द्रियता और आत्म–पीड़क तपस्या के धर्म वाले इस देश में लिंगम भी है और जगन्नाथ भी, साधु भी है और नर्तकी भी''...... इस पर मैंने तब भी कहा था कि मार्क्स इससे भारत का अपमान नहीं कर रहे हैं, वे तो भारतीय समाज के पैराडॉक्स, उसके अन्तर्विरोध, उसकी द्वन्द्वात्मकता का विश्लेषण कर रहे हैं। बहरहाल, र।मविलास जी भारतीयता के औदात्य को रेखांकित करना चाहते हैं, पश्चिमी एशिया और ऋग्वेद में आर्य सर्वोपरिता को प्रमाणित करना चाहते हैं ।......

पयोधि – अभी डॉ0 धनंजय वर्मा जी पुस्तक का परिचय दे रहे थे । चूंकि डॉ0 साहब भी मार्क्सवादी आलोचक हैं, आपने मार्क्सवाद का गहन अध्ययन किया है और उसके साथ–साथ हमारे प्राचीन भारतीय इतिहास और साहित्य का भी उन्होंने गहन अध्ययन किया है, इसलिए वे आधिकारिक रूप से यह बात कहने में सक्षम हैं कि रामविलास शर्मा जी की इस पुस्तक में उनकी दृष्टि क्या है, उसकी दिशा क्या है ? श्री प्रभुदयाल मिश्र जी ने चूंकि प्राचीन भारतीय साहित्य,

विशेषकर वैदिक साहित्य का व्यापक अध्ययन किया है, इसलिए हम जानना चाहेंगे कि ऋग्वेद के संदर्भ में इस पुस्तक को वे कैसे देखते है ? कितनी वैज्ञानिक बन पड़ी है यह पुस्तक ?

प्रभुदयाल मिश्र – ऋग्वेद की रचना और रचनाकाल को लेकर बहुत विचार हुआ है । सबसे पहले ''मैक्समूलर'' ने ऋग्वेद का रचनाकाल 1200 वर्ष ई.पू. बताया था । मैक्समूलर चूंकि ईसाई धर्म में गहन विश्वास करते थे, उनकी मान्यता थी कि मानव सभ्यता की जो सृष्टि हुई वह ईसा के जन्म के केवल चार हजार वर्ष पहले की है । उनको संभवतः इस आधार पर ऋग्वेद की रचनाकाल 1200 वर्ष ई.पू. के पहले ले जाने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं था । बाद में जाकर उन्होंने स्वयं अपनी इस थीम को पलटा और कहा कि ऋग्वेद का रचनाकाल इसके पहले भी हो सकता है । इधर तिलक ने ऋग्वेद का समय ज्योतिष के आधार पर ई.पू. 5000 वर्ष माना । किन्तु विगत अध्ययन की पृष्ठभूमि में वही थीम काम करती रही है कि आर्य आक्रांता थे, वे दूसरे देशों से आये थे और भारत में द्रविड़ रहते थे । हां, सिन्धुघाटी की सभ्यता, मोअनजोदड़ो और हड़प्पा ये विकसित नगर हमारे यहां थें । अतः बाहर से जब आर्य भारत में आये तो इन्हें उन्होंने आक्रांत किया । इन सभ्यताओं को नष्ट करने के साथ–साथ उन्होंने वेदों की रचना भी की, ऋग्वेद लिखा । ये इतिहास हमने पढ़ा है । लेकिन अब जब नये–नये शोध हो रहे हैं, एक नई थीम सरस्वती को लेकर आयी है । विचारक और अध्येता इस बात को मानने लगे हैं कि सरस्वती के आस–पास जो भारतीय सभ्यता थी वह बहुत विकसित थी । वास्तव में जो सरस्वती की सभ्यता थी, वह सिन्धु घाटी की सभ्यता से भिन्न नहीं थी । एक आक्रांता संस्कृति, एक आक्रमणकारी जाति इतनी बड़ी विचारक, इतनी बड़ी चिंतक तथा ऐसा सांस्कृतिक क्रांतिकारी परिवर्तन किसी देश में ला सकती है, यह किसी भी प्रकार लोगों के गले नहीं उतरता था । बहुत लोगों ने इस विषय पर लिखा है और लगातार यह शोध चली आ रही है । ऐसे अवसर पर वर्ष 1994 में श्री रामविलास शर्मा की यह पुस्तक प्रकाश में आयी तो लोगों को यह लगा कि अब यह लगभग सर्वमान्य धारणा है कि आर्य भारत में आये नहीं थे, भारत से पश्चिम एशिया या दूसरे देशों में, ईरान–ईराक तक गए थे । श्री रामविलास जी जो एक मार्क्सवादी आलोचक हैं, से जब हमें ऐसा इतिहास मिलता है, जो नए इतिहास और भारतीय सनातन भारतीय चिंतन परंपरा में सटीक और उपयुक्त बैठता है तो लगता है कि बात बहुत सही कही जा रही है । इस पुस्तक को मैने पढ़ा है । श्री रामविलास शर्मा जी ने बार–बार दोहराया है कि –यह उनका वस्तुपरक अध्ययन है, यह एक वैज्ञानिक अध्ययन है, भाषाशास्त्रीय अध्ययन है । इसमें उन्होंने बहुत प्रामाणिक तर्क जुटाए

हैं । उनकी जो स्थापना है वह ठीक से समझ में आती है । वेदों के जो अंतःसाक्ष्य हैं उनका भी उन्होंने उपयोग किया है । ऋग्वेद के जो प्रमाण दिये हैं, वैदिक देवता हैं उनका तुलनात्मक अध्ययन और विश्लेषण किया गया है, भाषा और ऋग्वेद में प्रयुक्त शब्दों का विवेचन किया गया है –इस सबको पढ़कर यही लगता है कि श्री रामविलास शर्मा की स्थापना स्वीकार की जानी चाहिए । और जैसा कि उन्होने बार–बार दोहराया है, आज उस साम्राज्यवादी इतिहास–लेखन से मुक्त होने का अवसर आ गया है जिन्होंने हमें केवल यही बताया कि आक्रमणकारी भारत में हमेशा से आते रहे हैं । पहले भी आये बाद में भी आए, ठीक वैसे ही जैसे और भी पहले आते थे । पहले आकर उन्होंने यहॉ का सांस्कृतिक स्वरूप निर्धारित किया तथा एक बार फिर आ कर वे वही काम करने लगे हैं । जो होता रहा है, वही फिर से हो रहा है । इस प्रकार बाद के आक्रांता अपनी स्वीकृति चाहते रहे हैं । यह दासता से उत्पन्न स्वीकृति हममें बहुत समय तक नही रह सकती थी । हमारे यहॉ भी चिंतक हुए हैं, हमारे यहॉ भी विचारक हुए हैं । हमारी जो सांस्कृतिक विकास, सांस्कृतिक अध्ययन, सांस्कृतिक उन्नयन की अटूट परम्परा रही है वह इस तरह से बीच में कहीं खंडित न हो, यह सम्बल उन्होने हमें दिया है । मुझे लगता है कि जिस युग में, जिस संस्कृति में, भारत की निरंतर गरिमा गायी जाती रही है, उसी की यहां स्थापना है । बार–बार ऋग्वेद में भारत का उल्लेख आता है, सरस्वती का उल्लेख आता है, राष्ट्र की बात आती है । उसमें अनेक ऐसे सूक्त हैं । ऋग्वेद में एक ''विश्वामित्र एवं नदी संवाद'' का मैं यहां उल्लेख करता हूॅं । व्यास और सतलज नदियों को विश्वामित्र पार करना चाहते हैं । दक्षिण भारत की यात्रा से आये हुए हैं । दक्षिण भारत की यात्रा में उन्हें दक्षिणा में काफी सामग्री मिली हुई है । उस सामग्री को लेकर वे उत्तर की ओर जाना चाह रहे हैं । ये नदियॉ उनको कैसे मार्ग दें ? वे कहते हैं आप बहुत गति से बह रही हैं, हम जानते हैं आप दक्षिण में जाकर समुद्र में विलीन होंगी, आपकी वेगपूर्ण गति सुहानी लग रही है । नदियां कहती हैं –ये तो ठीक है, हम बह रही हैं और बहना हमारा काम है, समुद्र में भी हम मिलेगीं लेकिन आप क्यों हमारा स्तुतिगान कर रहे हैं ? आपका क्या प्रयोजन है ? हम तो वही काम कर रहे हैं, जो करते रहे है । ऋषि का कहना था –हम इसलिये आपका सम्बोधन कर रहे हैं क्योंकि हमारा विश्वास है कि आप हमारी बात सुनेगीं । हमारी बात समझेंगी, ठीक वैसे ही जैसे गाय अपने बछड़े को दूध पिलाने के लिये झुक जाती है, जैसे माता अपने शिशु को दुग्धपान कराने के लिये नत हो जाती हैं, वैसे ही आप हमें भी मार्ग दे देंगी । नदियॉ बड़ी प्रसन्न होती हैं और उनको मार्ग दे देती हैं । वे कहती हैं –हे ऋचाओं के सुहृद शिल्पी हमारा

संवाद कभी विस्मृत न हो । लेकिन एक बात जो बाद में विश्वामित्र कहते है – ठीक है आपने हमें मार्ग दिया, लेकिन आप नहर बनकर भारत भूमि को उर्वरा बनाइए, खेतों में बहिए, राष्ट्र का विकास करिए । राष्ट्र की बात वेदों में अनेकशः आती है राष्ट्रेऽस्मिन कीर्तिर्वृद्धिं ददातु मे। जब श्री रामविलास शर्मा एक ऐसे अखंड और विराट भारत की कल्पना करते हैं, जो भारतीय मानस में सनातनकाल से विद्यमान है तो यह लगता है कि अंततः शर्मा जी जो किसी द्वन्दात्मक भौतिकतावाद में पड़े हुए थे, आध्यात्म की ओर मुड़ चले हैं । बहुत लोग चाहेंगें कि ऐसा परिवर्तन आना चाहिए। यह सत्य का साक्षात्कार है । यह जो पुस्तक लिखी गयी है वह उनके जीवन के उत्तर भाग में लिखी गयी है । इसमें उन्हें एक सत्य का साक्षात्कार हुआ है। यह सत्य स्वीकार किये जाने योग्य है ।

पयोधि– मैं कालिया साहब का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूॅ –कालिया साहब दो बातें सामने आई हैं –एक तो यह है, जैसा कि डॉ0 धनंजय वर्मा जी ने कहा है, इसमें देवतंत्र के विकास की बात है और मिश्र जी ने यह बात कही कि इसमें ये बात सिद्ध करने की कोशिश की गयी है कि आर्य यहीं के थे और पश्चिम एशिया में फैल गए । आप एक मानव शास्त्री हैं, समाज शास्त्री हैं । आपने आदिम जीवन और उनके सांस्कृतिक जीवन विकास का गहन अध्ययन किया है । अतः आपसे ये जानना चाहता हूॅ कि इसमें जो देवतंत्र का विकास बताया गया है, वह आदिवासियों के देवी–देवताओं, देवतंत्र के विकास से क्या संबंध रखता है ? आप इसे वैदिककाल के उस जीवन के कितने करीब पाते है ? ये भी प्रकति की पूजा करते हैं और वेदों में भी प्रकृति की स्तुति की गयी है । इस संबंध में आप क्या कहना चाहेंगे ?

श्याम काालिया– बेसीकली मैं हिस्ट्री का स्टूडेंट रहा हूॅ । मोअनजोदड़ों की संस्कृति करीब 2500 ई.पू. से लेकर 1720 ई.पू. तक मानी गयी है जबकि सुमेर की संस्कृति करीब चार हजार वर्ष पूर्व की है । इसको शर्मा जी कैसे रिकंसाईल करते हैं, यह मेरी समझ से बाहर है । दूसरी चीज जो सामने आती है, वह यह है कि मोअनजोदड़ों संस्कृति को मूलतः द्रविड़ संस्कृति माना गया है, उसकी लिपि द्रविड़ मानी गई है । कैसे कहा जा सकता सकता है कि वह संस्कृत या ब्राह्मी का पूर्व रूप है ? ये दोनों चीजें मेरी समझ से बाहर हैं । इसके संबंध में जानना चाहूंगा । जहॉ तक देवी–देवताओं का प्रश्न आया है –ये बेसीकली प्रकृति पूजक रहे है । वैदिक संस्कृति और आदिवासी भी प्रकृति पूजक हैं और उनको उन्होंने मानव रूप दे दिया है ? स्पेसीफिकली देवियों को । जैसे कि मान लिया कि महादेव विराजमान है । कैसे ये डेवलपमेंट हुआ है । वो

साइमल्टेनियस हुआ है : यहॉ पर भी और पश्चिम में भी । उसको ये कहना कि ये यहॉ से गया है, वो वहॉ से आया है, मेरी समझ से बाहर है । जहॉ तक सुमेर के कल्चर का सवाल है, सुमेर के कल्चर के संबंध में, जैसा कि मैंने अर्ज किया, वह न केवल इससे पुरातन है, बल्कि अलग भी । शायद इसके ऊपर अवस्थी जी कुछ बता सकें ।

अभय अवस्थी– जैसा कि डॉ0 कालिया जी ने बताया दो तीन चीजें हमारे मन में उमड़ती हैं । वस्तुस्थिति ये है कि वेदों का जो स्वरूप हमारे सामने उपलब्ध है वह महा–भारतकालीन है । जब पहली बार कृष्णद्वैपायन व्यास ने वेदों को संहिताबद्ध किया था तो मूल रूप में इसके पहले किसने कब से कब तक क्या लिखा और कहॉ–कहॉ लिखा ये शोध करने की बात है । कौन सा सूक्त कितने हजार वर्ष पुराना है, यह अलग विवाद का प्रश्न है । जिस संस्कृति का प्रतिनिधित्व पश्चिमी एशिया से लेकर गंगा–जमुना तक रहा हो, उसमें कितनी जातियॉ, कितनी भाषाऐं, कितने प्रकार के लोग रह रहे होंगे, सोचने की बात है । यह व्यापक सुमेर से लेकर वाराणसी तक का क्षेत्र है । ऋग्वेद के सन्दर्भ में तो इतना व्यापक क्षेत्र आता है कि वहॉ अनेकों जातियां, अनेकों लोग, अनेकों प्रकार की विचारधाराएं विद्यमान थी । जैसे उत्तर प्रदेश में एक उक्ति प्रचलित हैं ''कोस–कोस पर बोली बदले, कोस कोस पर रीति।'' यानी वह सब भिन्नताओं का एक समूह था । वैसे केवल पुरातत्व सन्दर्भ भ्रामक ही नहीं, बहुत भ्रामक होते हैं । किस पत्थर और किस ईंट से भवन खड़े किये गये है, ये हमें बड़े भ्रमजाल में फंसा देता है । प्रायः हम इससे उबर नहीं पाते । इसके पहले डॉ0 साहब ने चर्चा में कहा था कि तीन हजार साल पश्चात् जो पुरातत्व का विद्यार्थी होगा वह आजू बाजू के मंदिर और मस्जिद में यहॉ साम्प्रदायिक सद्भाव देखेगा । वह इसकी पृष्ठभूमि के दंगों को भूल जाएगा । वह चाहे काशी हो, चाहे वाराणसी हो, चाहे भोपाल या मथुरा हो । तो इस भ्रम की स्थिति से इतिहास का निर्धारण नहीं होता । मिथकों के आधार पर भी इतिहास का निर्माण नहीं होता । इतिहास का निर्धारण, खासकर काल का निर्धारण, किस आधार पर करें, यही प्रश्न है । डॉ0 साहब ने अपनी मान्यताओं और पुरातत्वीय सन्दर्भो के अनुसार पश्चिमी एशिया से लेकर पूर्वी यूरोप तक इस क्षेत्र को आर्यावर्त माना है । हमारा इसके बारे में अलग ढंग का सोच है । तिलक की उसमें अवधारणा जुड़ती है । हमारा आवागमन सतत चलता रहा है । उत्तर से लोग आते भी रहे हैं चाहे वे आर्य हों, चाहे शक हों, चाहे यूनानी सिकंदर हो, चाहे तुर्क हों, हूण हों । हम उत्तर से आते भी रहे, और यहां से सतत बाहर जाते भी रहे । हमारा आना और जाना सतत चलता रहा । अब हम मूलतः कहॉ के थे, यह तो शोध की बात है । मलयाली या पंजाबी आज

देश के किस खण्ड में नहीं हैं ? उस भाषा के अवशेष भी वहॉ मिलेंगे । उस संस्कृति के अवशेष तो वहॉ मिलेंगे ही । अय्यप्पा मंदिर भी वहॉ मिलेगा । इसलिये वस्तुस्थिति यह है, कि भारतवर्ष का पौराणिक युग में सबसे पहले सप्तद्वीप (जम्मू तक) जहॉ हिमालय पश्चिम से उत्तर की ओर विभाजित होता है उसकी पामीर के पठार, तिब्बत के पठार तक एक विभाजन रेखा थी । उस विभाजन रेखा के इधर से उधर के सात देशों की जो परिकल्पना हमने की वह ''सप्तद्वीप'' का भूगोल था । उसका सांस्कृतिक संबंध पूरे उन सात द्वीपों से था । उन द्वीपों के प्राकृतिक कारणों से दुनियां बढ़ती गयी । जैसा कि श्री रामविलास जी शर्मा ने महत्वपूर्ण मुद्‌दा उठाया है, राजस्थान का रेगिस्तान सिन्ध–प्रदेश था और पुष्कर–वर्ष के नाम से भारत के पौराणिक साहित्य में उपलब्ध है, । वह विलुप्त हो गया है । उसके बाद लोग यहॉ से उधर गए । कुछ पूर्व की ओर जाते हैं और कुछ पश्चिम जाते हैं । कुछ को जहॉ भी जगह मिलती है निकलते चले जातें है । वह एक बिखराव की स्थिति थी । अब चूंकि इतने बड़े क्षेत्र से हमारा सीधा–सादा संबंध था, तो व्यापार भी होगा, नगर भी होंगे, बंदरगाह भी होंगे, राजपथ भी होंगे । इसलिये उसमें कहीं सांस्कृतिक दुराव नहीं था, सांस्कृतिक सामंजस्य था । यूरोप से लेकर कम–से–कम इस वैदिककाल में बनारस तक ।

धनंजय वर्मा– एक तो यह सिद्धान्त है कि भारत पर आर्यो ने आक्रमण किया था । और सिन्धु सभ्यता को नष्ट करने वाले आर्य ही थे । ''यह सभी कुछ एक सोचे–समझे, सुनियोजित साम्राज्यवादी षड्‌यंत्र का हिस्सा रहा है'' यह कहना है इस पुस्तक की भूमिका में श्री श्याम कश्यप का । और रामविलास जी के शब्द हैं ''–भारत पर आर्यो का आक्रमण –इस मान्यता का जन्म और प्रचार एशिया में यूरोपियन साम्राज्यवाद के विस्तार से हुआ.........इतिहासकारों और पुरातत्वज्ञों का दृष्टिकोण उपनिवेशवाद से प्रभावित रहा है ।'' मैं यहां यह याद दिलाना चाहता हूॅ कि 1921 तक तो यही मान्यता थी कि भारत की प्राचीनतम सभ्यता आर्यो की वैदिक सभ्यता है लेकिन सिंधु, पंजाब, गुजरात और सौराष्ट्र में उत्खनन से जो अवशेष मिले उन्होंने इस मान्यता को निर्मूल सिद्ध करके यह निष्कर्ष निकाला कि आर्यो की सभ्यता के पहले भी भारत में एक समृद्ध और श्रेष्ठ नागरिक सभ्यता थी । इस उत्खनन और बदली हुई धारणा के लिए भी ब्रिटिश ही जिम्मेदार हैं । लेकिन कुछ लोगों की बात और निष्कर्ष मेरे सिद्धान्त या अवधारणा से मेल नहीं खाते या मेरी मान्यता को सम्पुष्ट नहीं करते तो मुझे उनके इन्टेन्शन्स पर पर शक क्यों करना चाहिए ? थोड़ी देर के लिए मान भी ले कि व्हीलर, मेकाय और मार्शल के निष्कर्ष ''सुनियोजित साम्राज्यवादी

षड्यंत्र'' का हित्सा हैं तो कृपया मुझे अनुमति दें यह पूछने की कि रामविलासजी के निष्कर्ष और मान्यताऍ भी क्या सांस्कृतिक राष्ट्रवादी नहीं हैं? हमारे यहां तो यह धारणा लगभग बाबा आदम के जमाने से चली आ रही है कि सब कुछ हमीं थे, भारत ही विश्व का सांस्कृतिक और आध्यात्मिक गुरु रहा है, उसने ही सारी दुनिया में संस्कृति का प्रसार किया, उसी ने वेद दिए, धर्म और अध्यात्म दिए । यह एक आत्ममुग्ध अवस्था है और रामविलास जी इस आत्ममुग्ध अवस्था को मार्क्सवादी दृष्टि से युक्ति–संगत सिद्ध कर रहे हैं ।

मै इस प्रसंग में थोड़े विस्तार से अपनी बात कहने की अनुमति चाहता हूँ । पहले ऋग्वेद के रचनाकाल के बारे में । कालिया साहब ने अपनी बात कही, मिश्र जी ने मैक्समूलर का हवाला दिया । उधर विन्टरनिट्ज हैं जो इसे 3000 ईसा पूर्व मानता है । रामविलास जी इसे 3500 ईसा पूर्व मानते है । कुछ इसे 5000 ईसा पूर्व भी मानते है । बहरहाल इस पुस्तक में यह भी कहा गया है –कि ''यूनान का दर्शन और विज्ञान यूरोप के दर्शन और विज्ञान की आधार शिला है । इस दर्शन और विज्ञान की अनेक मूलभूत स्थापनाऍ भारतीय चिन्तन में सबसे पहले ऋग्वेद में विद्यमान हैं !''..... क्या इससे यह ध्वनि भी नहीं निकलती कि सारा दर्शन और विज्ञान यहॉ से वहॉ गया है? रामविलास जी सर विलियम जोन्स को उद्घृत करते हैं ''–ग्रीक की अपेक्षा संस्कृत अधिक पूर्ण है, लैटिन की अपेक्षा अधिक समृद्ध है और दोनों में से किसी की भी अपेक्षा अधिक सुचारु रूप से परिष्कृत है । पर दोनों के क्रियामूलों और व्याकरण रूपों में इतना गहरा सम्बन्ध है जितना अकस्मात उत्पन्न नहीं हो सकता । यह सम्बन्ध सचमुच ही इतना सुस्पष्ट है कि कोई भी भाषाशास्त्री इन तीनों की परीक्षा करने पर यह विश्वास किए बिना नहीं रह सकता कि वे एक ही स्रोत से जन्मी है, जो स्रोत शायद अब विद्यमान नहीं है।''...... मैं पूछना चाहता हूँ कि क्या वह स्रोत ऋग्वेद ही है ? भारत ही है ?.... अवस्थी जी ने अभी एक बढ़िया बात कही, पुरातत्व के बारे में.. .....मुझे इस पर जार्ज बर्नार्ड शॉ का एक वाक्य याद आ गया –''आर्कियालाजी.....इट्स अ गुड सब्जेक्ट.....व्हेरी फ्यू नो इट. एण्ड स्टिल फ्युअर कैन क्वेश्चन इट''..... तो रामविलास जी ने भारत पर आर्यो के आक्रमण सिद्धान्त के पुराने और नये आधारों के साथ भारत के पुरातात्विक विभाजन के आधार पर भी आर्यो के आक्रमण सिद्धान्त को निराधार सिद्ध किया है––अपनी किस पुरातात्विक खोज और अनुसंधान के आधार पर ?......जैसा मैंने पहले कहा है कि पुरातत्व वेत्ताओं और इतिहासकारों की एक विचारधारा रही है––व्हीलर से मार्याल तक जो, रामविलास के शब्दों में ''अंग्रेजों द्वारा प्रेरित भारतीय पुरातत्व की दिशा रही है'', उसके विपरीत लैंगडन और

ब्रिटेज तथा रेमण्ड अलचिन और रेनफ्रीव की भी एक विचार धरा रही है जो भारत पर आर्यो के आक्रमण सिद्धान्त का खण्डन करती है । आर्यो को भारत का ही प्राचीन निवासी मानती है और यह भी मानती है कि सिन्धु घाटी में आर्य भाषा ही बोली जाती थी । अब रामविलास जी का फैसला सुनिए–''भारत के जो इतिहासकार व्हीलर आदि की मान्यताएॅ दोहराते चले जाते हैं, उन्हें रेन्फ्रीव के तर्क संगत विवेचन पर ध्यान देना चाहिए । लैंगडन से रेन्फ्रीव (1931 से 1987) तक भारतीय पुरातत्व के ब्रिटिश विवेचन में एक धारा ऐसी रही है जो भारत पर आर्यो का आक्रमण सिद्धान्त अस्वीकार करती है, जो सिन्धु घाटी की सभ्यता को आर्य भाषा बोलनेवालों की सभ्यता मानती है । ''अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अंत में यही धारा विजयी होगी क्योंकि पुरातत्व भारत पर आर्यो के आक्रमण की साक्ष्य रूप कोई भी सामग्री अब तक प्रस्तुत नहीं कर सका''.... याने व्हीलर आदि उपनिवेशवादी और साम्राज्यवादी इसलिए विजयी हैं कि वे आपकी मान्यता से मेल नहीं खाते और लैंगडन वगैरह की विचारधारा इसलिए घोषित किए गए क्योकि वह आपकी मान्यता को सम्पुष्ट करते है । यही नहीं रामविलास जी तो यह भी कहते हैं कि ''दूसरे महायुद्ध के बाद क्रांतिकारी जन–आन्दोलन को विघटित करने के लिए अंग्रेजों ने जो कपट नीति अपनाई थी, व्हीलर का पुरातत्व उसके अनुरूप ढ़ाला गया था''....यह तो वहीं हुआ कि तुम्हारे पॉव...पॉव....हमारे पॉव चरण । क्या बात है हरिचरण!.. एक बात और । कृपया इसे व्यक्तिगत आक्षेप न समझा जाय....। इस पुस्तक में पूरा टेक्सट –पाठ सामग्री –कुल 212 पृष्ठों की है और इन 212 पुष्ठों में कुल मिलाकर 1072 उद्धरण हैं। याने प्रति पृष्ठ औसतन 5.30 उद्धरण ।.....तो इसमें मौलिक लेखन रामविलास जी का कितना हुआ ?.... फिर एक दिक्कत और है.....छपाई के कारण कई बार यही समझ में नहीं आता कि उद्धरण कहॉ समाप्त होता है और रामविलास जी की अपनी बात कहॉ से शुरू होती है ? क्या इसी को हम वैज्ञानिक और वस्तु परक विवेचन कहेंगे ?... फिर एक बिल्कुल सीधा सवाल –क्या रामविलास जी पुरातत्ववेत्ता हैं ? क्या वे पुराइतिहासज्ञ हैं ? क्या वे पुरानृतत्वशास्त्री हैं ? क्या वे पुराभाषाविद् है ? क्या वे पुरा–भूगोलशास्त्री हैं ? इन सबके अपने–अपने अनुशासन हैं । वे किस आधार पर इनमें से किसी के भी निष्कर्षो को रिफ्यूट कर सकते हैं ? क्या वे ऋग्वेद के विशेषज्ञ हैं ? क्योंकि उन्होंने जो उद्धरण दिए है वे भी सातवलेकर के अनुवाद हैं ।..... मै इनमें से कुछ भी होने का दावा नहीं कर सकता । हॉ , वेद मैंने पढ़े हैं, मगर अनुवाद से और प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति का भी मैं एक विनम्र विद्यर्थी रहा हॅू.... एक जिज्ञासु लेकिन जागरूक पाठक.....उसी हैसियत से मेरे ये सवाल हैं !

रामविलास जी की यह पुस्तक जब मेरे पास आई और मैने इसे पढ़ा तो मुझे तुरन्त श्रीपाद अमृत डॉगे की याद आ गयी । उनकी बेटी और दामाद की सम्भवतः वेद सम्बन्धी किसी पुस्तक की भूमिका के लिए भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के कुछ लोगों ने डॉगे पर संशोधनवाद चस्पॉ कर दिया था और उन्हें प्रतिक्रियावादी तक घोषित कर दिया था । तो क्या अब रामविलास जी को भी संशोधनवादी और प्रतिक्रियावादी घोषित कर दिया जाएगा ? क्योंकि अपनी इस पुस्तक से वे जिस विचारधारा का समर्थन कर रहे हैं वह न केवल भारतीय जनता पार्टी और राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की है बल्कि किसी हद तक विश्व हिन्दू परिषद्, बजरंग दल और शिवसेना की भी है ।.........मुझे अपना एक प्रसंग सुना लेने दीजिए.......एक दिन श्री सतीश जायसवाल मेरे घर आये । उन्होंने विस्तार से मेरी दिनचर्या और हाल–चाल के बारे में बात की । और ''नवभारत'' के एक अंक में एक बड़ा सा कैप्शन (नियमित वेद पाठ करता हुआ एक मार्क्सवादी आलोचक) देकर दो–तीन कालम का एक इन्टरव्यू–नुमा मैटर छाप दिया । इस पर मेरे प्रगतिशील दोस्तों के बीच फुसफसहट का दौर चला कि धनंजय जी तो भारतीय जनता पार्टी में जाने की तैयारी कर रहे है। मुझे किसी पार्टी में जाने की जरूरत नहीं है और न ही आकांक्षा है । मुझे हैरत है कि इस पुस्तक की वजह से रामविलासजी पर ऐसा कोई आरोप अभी तक क्यों नहीं लगा ? एक लगभग अंतिम बात......यह मान भी लिया कि आर्य इसी देश के थे, यहीं से पश्चिमी एशिया में उनकी संस्कृति का विस्तार हुआ, उनका धर्म–दर्शन–विज्ञान गया तो इससे ''वर्तमान समाज के पुनर्गठन'' की कौन–सी रूपरेखा उभरती है ?......उसका कौन–सा ब्लूप्रिन्ट आपके पास है ?........

पयोधि– एक प्रश्न मेरे मन में भी आ रहा है । वह भी आप लोगों के सामने रख दूं । रामविलास शर्मा जी की पुस्तक में जब ऋग्वेदकाल की बात हो रही है और पश्चिम एशिया से उसको जोड़ा जा रहा है, तो क्या आर्य और द्रविड़ संस्कृति की व्याख्या भी उन्होंने की है ? यदि की है तो वह अलग–अलग किस रूप में की गयी है ?

श्याम कालिया– अच्छा किया ये प्रश्न पूछ लिया । अभी तक जितनी चर्चा हुई उसमें रेशियन क्लासीफिकेशन पर किसी का ध्यान नहीं गया । आर्यो के लिए कहा गया है कि वे श्वेत वर्ण के, ऊँचे कद के थे और उनके फीचर्स शार्प होते थे । ये जो फीचर्स हैं वे इस उपमहाद्वीप में नहीं थे । इन फीचर्स के लोग बाहर से ही आए थे । द्रविड़ और आर्य के जो फीचर्स हैं, उनमें अन्तर है । वे दो डिफ्रेंट रेशेज हैं । दोनों अलग–अलग हैं । ऐसी स्थिति में यह कह पाना कि मोअनजोदड़ों की सभ्यता द्रविड़ो की नहीं थी, बड़ा मुश्किल है ।....

धनंजय वर्मा – दरअसल रामविलास जी ने अपना ध्यान हडप्पा पर केन्द्रित किया है । इसे वे केन्द्रबद्ध राज्य सत्ता और सुनियोजित अर्थतंत्र के मॉडल के रूप में पेश करते हैं । स्टुर्ट पिगाट भी ''हडप्पा को मूलतः भारतीय सभ्यता'' मानता है । उसे लगता है कि –''हडप्पा संस्कृति एक दुर्बल पुरातात्विक नामकरण है । इस नाम के पीछे पश्चिमी एशिया का एक बड़े–से–बड़ा अनाम राज्य छिपा है......'। पिगाट के इस उद्धहरण के बाद रामविलासजी कहते है ''यह अनाम एशियाई राज्य स्पष्ट ही भारतीय राज्य है'' और यह भी कि ''मिस्र और सुमेर प्राचीन संसार के सबसे विकसित देश, संगठित उद्योग के संचालन में हडप्पा से पीछे थे ।'' हडप्पा वासियों को आर्थिक नियोजन का ज्ञान था । वे सुनियोजित नगर निर्माण करते थे । उनके श्रमिक आवास थे । मुद्रा विनिमय था । मोहरें और बॉट थे । श्रमिकों को पगार दी जाती थी । यहॉ तक कि शताब्दियों बाद के मौर्य साम्राज्य को भी हडप्पा का ही उत्तराधिकारी घोषित किया गया है और कौटिल्य के अर्थशास्त्र का पूर्वानुमान किया गया है । निष्कर्ष के रूप में रामविलास जी कहते है –'पिगाट यह मानकर चलें हैं कि मितन्नी से ही आर्य भारत पहुंचे होगे । वे भारत से निकलकर मितन्नी पहुंचे हों, उनके लिए यह कल्पनातीत है । पार्जिटर इस दुराग्रह से मुक्त थे । 1928 में लैंगडन अपने मत का प्रतिपादन कर रहे थे कि आर्य भारत के प्राचीन निवासी हैं । उससे पहले पार्जिटर ने इस प्रचलित धारणा का जोरदार खंडन किया था कि उन्होंने उत्तर पश्चिम से भारत में प्रवेश किया था ।''.....

इस प्रसंग में मैं कुछ जोड़ना चाहूंगा । सिन्धु घाटी की सभ्यता, जिसे रामविलास जी आर्यो की सभ्यता मानते हैं, 1921 तक भारत की प्राचीनतम सभ्यता, आर्यो की वैदिक सभ्यता ही मानी जाती थी, लेकिन सिन्धु, पंजाब, गुजरात और सौराष्ट्र में उत्खनन से जिस ताम्रयुगीन सभ्यता के अवशेष मिले, उन्होंने यह धारणा निर्मूल सिद्ध कर दी । उत्खनन सिर्फ हडप्पा में नहीं हुआ । मोअनजोदड़ो में भी हुआ जो अब पाकिस्तान में है और इसी आधार पर पाकिस्तान अपनी सभ्यता को उससे जोड़ रहा है । याने वह राष्ट्र जिसकी उम्र कुल मिलाकर 57–58 वर्ष हैं, वह अपनी सभ्यता हजारों वर्ष पहले की बता रहा है । क्या यह उसकी हीनता ग्रंथि ही नहीं है ? और हम भी तो यही कर रहे हैं । रामविलास जी भी तो यही कर रहे हैं । अपने अतीत–गौरव के मोह में हम अपने अतीत को जितने पीछे ले जा सकते हैं, उतना ही हमारे पुरातन–अहं में वृद्धि होती है । लेकिन इससे हम हासिल क्या करना चाहते है ? राहुल सांकृत्यायन के एक प्रसिद्ध निबन्ध ''दिमागी गुलामी'' की एक बात मेरे जेहन में बेसाख्ता कौंधती है कि जो जाति जितनी पुरानी होती

है, उसकी मानसिक गुलामी भी उतनी ही बड़ी होती है ।.... तो मैं कह रहा था कि खुदाई सिर्फ मोअनजोदाड़ो और हडप्पा में ही नहीं हुई, चन्दूदड़ो और झुकरदड़ो, नाल और कान्हूदड़ो में भी हुई। दरबार कोट,पेरियानो, घुण्डई, कुल्ली, मेही, अमरी, लोहूमजोदड़ो, अलीमुरार, रूपड़, रंगपुर, सुत्कगेण्डोर, लोथल, कालीबंगा में भी हुई। एन.सी. मजूमदार ने तो सिन्ध प्रदेश के दक्षिण में हैदराबाद से लेकर उत्तर में जेकोकाबाद तक बसे हुए प्राचीन नगर की एक श्रृंखला के ध्वंसावशेषो को खोज निकाला है। इस सबके निष्कर्ष सामने आना चाहिए....। सिर्फ व्हीलर या लैंगडन, सिर्फ कौसाम्बी या राधाकुमुद मुखर्जी या फिर रामविलास जी के निष्कर्ष ही अंतिम निष्कर्ष नहीं माने जाने चाहिए। सारी सामग्री, सारे सिद्धान्त, सारी अवधारणाएं पाठकों, विद्यार्थियों के सामने होनी चाहिए .... मैं संक्षेप में उन्हे पेश करने की इजाजत चाहता हूं :

तो एक मत तो यह है कि सिन्धु सभ्यता के जनक आर्य थे तथा वह मूलतः वैदिक सभ्यता ही है। यह मत है डॉ. लक्ष्मण स्वरूप और रामचन्द्रन का। दूसरा मत गार्डन चाइल्ड का है कि सिन्धु सभ्यता के जनक सूमेरियन थ। तीसरा मत है कि इस सभ्यता के निर्माता पणि लोग थे। यास्काचार्य ने पणियों को व्यापारी मान है। चौथा मत है राखालदास बनर्जी तथा अन्य विद्धानों का कि सिन्धु सभ्यता के जनक द्रविड़ लोग थे। व्हीलर ने भी ऋग्वेद में वर्णित दस्यु या दास को सिन्धु सभ्यता का जन्म दाता माना है। फिर एक सबसे महत्वपूर्ण बात, इस पर कालिया साहब कुछ कह सकते है, मोजनजोदड़ों, हड़प्पा और चन्दूदड़ो में मिले अस्थिपंजरो के परीक्षण से सिन्धु घाटी के निवासियों की शरीर रचना पर रौशनी पड़ती है । इससे साफ होता है कि सिन्धु घाटी में प्रोटो आस्ट्रोलायड़, भूमध्यसागरीय, मंगोलियन और अल्पाइन प्रजाति के लोग रहते थे। और काल निर्धारण का जहां तक सवाल है, सामान्यतः इस सभ्यता का आरम्भकाल ईसा से लगभग पांच हजार वर्ष पहले माना जाता है और इसका पिछला छोर लगभग 2750 ईसा पूर्व माना जाता है। हड़प्पा सभ्यता के विश्लेष्ण में इन बातों का ख्याल रखा जाना चाहिए। .... एक अंतिम बात – टाइम्स आफ इंडिया दिल्ली के 28 अप्रैल 2005 में प्रख्यात जिनेटिसिस्ट और बायो–हिस्टोरियन स्पेन्सर वेल्स का एक इन्टरव्यू छपा है – 'एन इन्क्रेडीबिल जर्नी।' । उसमें कहा गया है। –– ''वी शेयर द डीएनए आव ए कामन ग्रैण्ड मदर हू लिव्ड सम 1.50.000 इयर्स एगो इन अफ्रिका''...... इसके बाद रेसेस का, नस्ल का झगड़ा ही कहॉ उठता है –आर्य हो या द्रविड़, सुमेरियन हो या मिस्री –हैं तो सब उसी मातामही की संतान ?..... और प्रोग्रेस पब्लिशर्स, मास्को से 1963 में

प्रकाशित एक पुस्तक है–''द रेसेस आव मैनकाइन्ड'' –लेखक हैं प्रोफेसर एम0नेस्त्यूर्ख । इसकी भूमिका में प्रोफेसर एन0एन0 चेबोक्सारोव लिखते हैं ––''द रेसेसस आव मैनकाइन्ड आर, इन एक्चुअल फैक्ट, जियाग्राफीकल (आर टेरीटोरियल) वेरिएशन्स, हिस्टारीकली कन्डीशन्ड, आव अ सिंगल फिजिकल टाइप––मैंन''...

श्याम कालिया – स्पेन्सर वेल्स की जिस बात का तुमने उल्लेख किया है उस प्रसंग में बात यह है कि अगर अलग–अलग प्रजातियों के लोग मिलते हैं तो भी उनका डीएनए तो एक ही होता है । चूंकि डीएनए एक ही माना गया है और यह डीएनए मूलतः उसी से मिला है इसलिए रेसेस अलग होने के बावजूद वेल्स का ही कहना है ''वी सी इट ऐज अ कामन हैरीटेज आव अवर स्पीशीज'....। जैसा कि हम लोगों को पढ़ाया गया है कि आर्यो का विस्तार तीन साइड्स से हुआ है एक तो उत्तर से, एक मिडिल एशिया से और एक मंगोल साइड़ से उनका आगमन और फैलाव हुआ है इसीलिए उनके फिजिकल फीचर्स भी अलग–अलग हैं. अनलाइक द्रविड्स......

धनंजय वर्मा– रेसेस पर से याद आया । मेरे एक मित्र थे । अल्लाह को प्यारे हो गए । वो खुद को शुद्ध पठान कहा करते थे । और मैं उन्हें छेड़ने के लिए उसमें जोड़ दिया करता था हॉ, करिया पठान ! क्योंकि शुद्ध पठान तो खूब गोरा–नारा, लम्बा–तडंगा और तीखे नाक–नक्श वाला होता है । मैं यहॉ रंगभेद की शरण नहीं ले रहा हूॅ, नस्ल की बात कर रहा हू । और जब भी नस्ल की बात उठती है मुझे हिन्दी साहित्य के महापंडित आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की एक बात याद आ जाती है । वो कहते है कि जाति, भाषा, धर्म, संस्कृति, नस्ल इनकी शुद्धता एक विशुद्ध मिथ है, झूठ है, गप्प है, क्योंकि इन सबमें मिलावट होती है । मिलावट से ही इनका विकास होता है । शुद्धता के आग्रह से विकास नहीं होता । शुद्धता के दुराग्रह से कूपमंडूकता आती है या विघटन होने लगता है जैसे कि पारसी......तो मुझे यह भारतीयता का गर्व, विश्व–गुरु का दम्भ और आर्य दर्प भी कुछ अजीब–सा लगता है । इसमें और नाजी सोच में फिर क्या अंतर रह गया ? नाजी भी खुद को शुद्ध आर्य कहते– मानते थे ! जबकि हिटलर किसी कोण से आर्य नहीं था, न वह लम्बा–तडंगा था, न उसके नाक–नक्श तीखे थे ।....तो क्या हमारा आर्य–दर्प भी एक फासिस्ट सोच का समर्थन नहीं करता.....बहरहाल......सृष्टि कथाएॅ और दर्शनिक उद्भावनाएॅ में रामविलास जी कहते हैं –''बाइबिल का 'वेस्ट आफ वाटर्स' मजे में ऋग्वेद के 'अप्रकेतं सलिलं' का अनुवाद हो सकता है । मुझे एक विलक्षण व्युत्पत्तिशास्त्री की याद आ गई । एक उर्दू दॉ कहने लगे कि ये जो अंग्रेजी है वो उर्दू से ही निकली है । हम कहते है 'देखो रे शान' और अंग्रेजी में

हो जाता हैं 'डेकोरेशन'.... और अपना 'शेख पीर' वहॉ हो जाता है शेक्सपीयर ।......मैं कहना यह चाहता हूॅ कि आर्यो के मूल निवास स्थान और आदि देश के निर्धारण के प्रसंग में पुरातत्ववेत्ता और पुरा–इतिहासकार आम तौर पर पॉच साधनों को आधार बनाकर किसी निष्कर्ष पर पहुॅचते हैं––पुरा–इतिहास, पुरा–भाषा विज्ञान, पुरातात्विक सामग्री, शरीर–रचना–शास्त्र (रेशियल एन्थ्रपालीजी) और शब्दार्थ–विकास–शास्त्र (सीमासियालाजी) और इन पॉचों के आधार पर आर्यो के आदि देश या मूल निवास स्थान के बारे में चार सिद्धान्त प्रचलित हैं ।

पहला यह कि आर्यो का आदि देश योरोप था । फिलिप्पोसासिटी और सर विलियम जोन्स ने संस्कृत, ईरानी और योरोप की विविध भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन से यह प्रतिपादित किया है । यूरोप में भी आर्यो का आदि देश कौन था इस पर भी अलग–अलग मत हैं । डॉ0 गाइल्स मानते हैं कि आर्यो की आदि भूमि है––हंगरी, बोहिमिया और आस्ट्रिया या डेन्यूब नदी का प्रदेश । जर्मनी के विद्वान पेन्का जर्मन प्रदेश को आर्यो का आदि देश मानते हैं । उधर मच महोदय पश्चिमी बाल्टिक समुद्र तट को आर्यो का मूल देश मानते हैं । नेहरिंग दक्षिणी रूस–यूक्रेन– को उनका आदि देश मानते हैं ।

दूसरा सिद्धान्त यह मानता है कि आर्यो का आदि देश एशिया था । एशिया में भी बैक्ट्रिया को आर्यो का आदि देश मानने वाले विद्वान है––जे0जी0 रोड़ । मैक्समूलर ने यह प्रतिपादित किया कि आर्यो का आदि देश मध्य एशिया था । एडवर्ड मेयर की मान्यता है कि पामीर का पठार उनका आदि देश था । मोट्जे और हर्ट्ज फेल्ड मानते हैं कि रूसी तुर्किस्तान उनका आदि देश था । ब्रेन्ड स्टीन एशियाई रूस मे किरगीज स्टेप्स के मैदान को आर्यो का आदि देश मानते हैं ।

तीसरा सिद्धान्त यह मानता है कि आर्यो का आदि देश आर्कटिक प्रदेश या उत्तरी ध्रुव प्रदेश है । इसके प्रतिपादक हैं– महान देशभक्त और राष्ट्रवादी लोक मान्य बाल गंगाधर तिलक । उन्होंने अपनी पुस्तक–आर्कटिक होम इन वेदाज– में यह प्रतिपादित किया है । उत्तरी ध्रुव की दीर्घकालीन उषा, वहॉ के षट्मासी दिन–रात शीत की बहुलता और प्राकृतिक दृश्यों का जो वर्णन वेद और आवेस्ता में है, उसी के आधार पर तिलक की यह मान्यता है । और तिलक से बड़ा राष्ट्रवादी कौन हो सकता है ? वे तो राष्ट्रवाद के प्रवर्तक और प्रेरणा–पुरूष रहे हैं । आश्चर्य की बात तो यह है कि रामविलास जी ने तिलक का कहीं नामोल्लेख तक नहीं किया । इसी तरह महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन ने भी ''ऋग्वेदिक आर्य'' नामक पुस्तक लिखी है । उसका भी यहॉ जिक्र तक नहीं है । राहुल जी ने तो ''मध्य एशिया का इतिहास'' नामक दो खंडों में एक महाग्रंथ

भी लिखा है । रामविलास जी की यह पुस्तक पढ़ते हुए मुझे लगा कि कहीं उनके मन में राहुल जी से होड़ लेने या उनकी बराबरी करने की मंशा तो नहीं रही है ? बहरहाल......

चौथा सिद्धान्त है कि आर्य भारत के मूल निवासी हैं । तो रामविलास जी का यह आग्रह कि आर्य भारत के मूल निवासी हैं, उनकी कोई नयी–मौलिक खोज नहीं है । भारत में भी पं0 गंगानाथ झा ने ब्रह्मर्षि प्रदेश को आर्यो की मूल भूमि माना । अविनाशचन्द्र दास और सम्पूर्णानन्द ने सप्त–सिन्धु प्रदेश को, श्री डी0एस0त्रिवेदी ने मुलतान के पास देविकानन्द प्रदेश को, श्री कल्ल महोदय ने काश्मीर और हिमालय प्रदेश को, तथा डॉ0 राजबली पाण्डेय ने मध्यदेश याने उत्तर प्रदेश और बिहार को आर्यो का आदि देश प्रतिपादित किया है । मैंने इस मुद्दे पर इतने विस्तार से बात इसलिए कही कि पाठकों को यह भी मालूम हो कि ''पश्चिमी एशिया और ऋग्वेद'' में जो प्रतिपादित किया गया है वही एकमात्र सिद्धान्त नहीं है । इस प्रसंग में और भी सिद्धान्त हैं ।

श्याम कालिया– इस पर मुझे एक वाक्य याद आया । मेरे गुरु कहा करते थे कि जब आप एक सिद्धान्त घड़ लेते हैं तो फिर उसके दास ही बन जाते है ।

प्रभुदयाल मिश्र– मुझे एक बात कहनी है कि हमारे विचार के केन्द्र में ऋग्वेद और पश्चिमी एशिया पुस्तक है । सम्भवतः यह अधिक उपयुक्त होता कि रामविलासजी ने ऋग्वेद के अन्तःसाक्ष्य पर्याप्त मात्रा में दिए होते । जैसा कि अभी डॉ0 वर्मा बता रहे थे इसमें प्रचुर मात्रा में उद्धहरण हैं किन्तु वे बाहय हैं। लेकिन एक बात जो डॉ0 वर्मा जी ने कही, जिन पश्चिमी और यूरोप के विचारकों को उन्होंने अपने साथ रखा है तथा कुछ को नकारा है तो ऐसा हो सकता है कि उनकी दृष्टि यह रही हो कि जिस क्षेत्र के विचारक एक थ्योरी ला रहे हैं, उसी क्षेत्र के विचारक, वही यूरोप के ही विचारक, दूसरी थ्योरी भी प्रतिपादित कर रहे हैं । अपनी बात के समर्थन के लिए तथा दूसरों को काटने के लिए उन्होंने आस–पड़ोस के विचारकों –विश्लेषकों को ही रखा है । लेकिन एक अधिक स्वीकार्य विचार तो दिया उन्होंने । और यह विचारधारा बराबर आगे बढ़ रही है । इसमें हाल में अनेक शोध हुए है । सेटेलाइट से सरस्वती के सम्बन्ध में चित्र लिए गए है । इस दिशा में अमेरिका के डेविड फ्राली और भारत के राजा राम आदि विद्वानों ने यह स्थापना की है कि सरस्वती के किनारे विकसित समृद्ध पुरा–संस्कृति जल सूख जाने के कारण लुप्त हो गई थी । सरस्वती नदी का ऋग्वेद में बार–बार उल्लेख आता है । अथर्ववेद में इसका कहीं नाम तक नहीं है । इससे यही सिद्ध होता है कि अथर्ववेद के रचनाकाल तक यह नदी सूख चुकी थी ।

धनंजय वर्मा– इस प्रसंग में एक बात ध्यान देने की यह है कि रामविलास जी तो लिखते हैं कि ''ऋग्वेद में सरस्वती जल से भरी शक्तिशाली नदी है । ऋग्वेद ही नहीं उसके बहुत समय बाद रचे गए यजुर्वेद में भी उसका यही स्वरूप हैं''.... लेकिन श्री श्याम कश्यप भूमिका में लिखते हैं– ''हडप्पा (सिन्धु) सभ्यता का ह्रास (जो प्रायः 1750 ईसा पूर्व माना जाता है) सरस्वती के जलहीन होने पर हुआ था यानी सरस्वती के जल हीन होने से बहुत पहले क्योंकि अथर्ववेद में भी वह जल से भरी–पूरी है ।''.... इसे क्या समझा जाए ?..... वो कहावत भी है.....गुरु तो गुड़ ही रहे, चेला शक्कर हो गए ।.... बहरहाल.....मैं समझता हूँ, इस प्रसंग में चर्चा और भी होनी चाहिए लेकिन अब समय ज्यादा हो रहा है । एक महत्वपूर्ण बात में रेखांकित करना चाहता हूँ । पश्चिमी एशिया में आर्यो के प्रभाव–विस्तार के सन्दर्भ में देव पूजा के भारतीय रूप के अन्तर्गत ओ0आर0गुर्ने के एक लम्बे उद्धहरण के बाद रामविलास जी लिखते हैं' ''दंड की कठोरता को छोड़कर सब कुछ ऐसा है जिससे भारत के लोग अच्छी तरह परिचित है ।..... जिप्पबन्द के ऋतु देव का संबोधन हटा दिया जाए तो यह विश्वास करना कठिन होगा कि यह सब भारत के बाहर भी कहीं होता था, वह भी ईरान, ईराक पार करके तुर्की के उत्तरी भाग में । या तो यह सारा आचार–विचार भारत से वहॉ पहुंचा था या फिर वहॉ से भारत आया । दोनों जगह उसका स्वतंत्र विकास हुआ हो या दोनों के भिन्न स्रोत हों, इसकी सम्भावना कम हैं ।''..... मेरा कहना है कि इसकी सम्भावना कम क्यों है ? दोनों जगह एक–साथ, साइमल्टेनियस या थोड़े आगे–पीछे उनका स्वतंत्र विकास क्यों नहीं हो सकता है?.... मसलन् बॉस से टोकनी बुनने का काम या मृतकों के लिए स्तम्भ लगाने की प्रथा सिर्फ बस्तर के आदिवासियों में विकसित नहीं हुई वह अफ्रीका और अमरीका के आदिवासी कबीलों में भी है ।

प्रभुदयाल मिश्र– रथ का उदाहरण रामविलास जी ने दिया है । आर्यो के रथों में अरे होते थे, सुमेर के रथो में नहीं......

धनंजय वर्मा– इस प्रसंग में मेंरा कहना है कि हमारे यहॉ सदियों से बैलगाड़ियॉ चल रही है । कालान्तर में उसमें एक सुधार तो यह हुआ कि चकों में लोहे के रिंग लगने लगे और अब उनमें टायर लगाए जाते हैं । तो सुमेर के जिस रथ की बात की है, रामविलास जी ने, तो क्या जरूरी है कि सुमेर के रथों में अरे लगाने के लिए आर्य ही वहॉ गए ? वे खुद भी उसका विकास क्यों नहीं कर सकते थे ? टेक्नालाजी का विकास करने का जिम्मा क्या सिर्फ भारत के आर्यो ने ही ले रखा था ? क्या तकनीकी विकास वहॉ नहीं हो सकता ? मुझे तो लगता है रामविलास जी तो यहॉ

सांस्कृतिक राष्ट्रवादी से भी आगे बढ़कर अंधराष्ट्रवादी हो गए हैं, धुर ''शावनिस्टिक'' हो गए है यहॉ । वो लगभग हर चीज को यहीं से गया हुआ बता रहे हैं । मसलन, वो कहते हैं––''रथ और सूर्य बिम्ब का प्रसार मिस्र और यूनान से लेकर बैबिलोन (ईराक) तक है । यह भारतीय आर्यो के प्रभाव–विस्तार का प्रमाण है ।''....मेरा सवाल है कि सूर्य क्या सिर्फ भारत में ही उदित होता है ? उसके बिम्ब, उसकी प्रार्थना उसकी पूजा समानान्तर और स्वतंत्र रूप से अन्य देशों–मसलन् लैटिन अमरीका–की संस्कृति और माया सभ्यता में भी क्यों नहीं हो सकती ?.....

पयोधि– मेरे मन में जो प्रश्न बन रहा है, वह इसी सम्बन्ध में है । मैं यह सोच रहा था कि ये जो हम आर्यो और द्रविड़ो की संस्कृति और सभ्यताओं में अन्तर करते हैं क्या वह आज के सन्दर्भ में केवल इतना ही तो नहीं है कि एक नागर संस्कृति और सभ्यता है और दूसरी ग्रामीण संस्कृति और सभ्यता है ?......

धनंजय वर्मा– हॉ, आज भी हम देख रहे हैं कि एक नागर सभ्यता है और एक ग्रामीण संस्कृति है और दोनों आस–पास और पास–पड़ोस में है । अवस्थी जी ने जलवायु की बात की थी । तो जलवायु और भौगोलिकता भी आपके आचार–विचार ही नहीं आपकी शरीर रचना और रंग–आदि भी निर्धारित करती है । मसलन कोई श्यामवर्णी काश्मीर में जाकर बस जाय तो उसकी आने वाली पीढ़ी, संतति गौर वर्ण हो जायेगी । तो प्रकृति का प्रभाव भी पड़ता है । एक बात, सभ्यता और संस्कृति की । संस्कृति का मतलब सिफ मनोरंजन, प्रदर्शन, उत्सव नहीं है । वह भारत भवन और कला परिषद्, संग्रहालय और रवीद्र भवन तक सीमित नहीं है । सभ्यता और संस्कृति का विकास होता है–जीवन संघर्ष के दौरान । संस्कृति को परिभाषित और निर्धारित करने वाले सिर्फ विद्यानिवास मिश्र या रामविलास शर्मा नहीं हैं । ए0एल0 क्रोबर की एन्थ्रापालाजी को पढ़िए तो समझ में आएगा कि संस्कृति और भाषा की प्रकृति क्या हैं ? उसके पैटर्न क्या हैं ? उसकी प्रक्रिया क्या है ? संस्कृति परिवर्तन कैसे होता है ? विकास और विस्तार कैसे होता है ? वह सिर्फ साहित्य का प्रश्न और चिन्ता नहीं है उसके नृतत्वशास्त्रीय और समाजशास्त्रीय सन्दर्भ और अर्थ हैं । लेकिन अब हालत यह हो गई है कि साहित्य ही साहित्य का स्रोत होता जा रहा है । साहित्य के अलावा अन्य अनुशासनों की ओर कोई जाना ही नहीं चाहता ! इसलिए मेरा कहना है कि यदि रामविलास जी ने खुद कोई पुरातात्विक खोज की होती तो उन्हें व्हीलर की आलोचना और लैंगडन का सहारा लेने की जरूरत नहीं पड़ी होती । आपने चार लेखकों को एक तरफ रख लिया और दूसरे चार को दूसरी तरफ । फिर एक वर्ग की मजम्मत और दूसरे वर्ग की तारीफ !

रामविलास जी की आलोचना का यही पैटर्न है । वे अपना अभीष्ट पहले तय कर लेते है, दिशा तय कर लेते हैं । फिर उसके लिए तर्क और प्रमाण और उद्धरण जुटाना शुरू करते हैं और बिना दॉये–बॉये, ऊपर–नीचे, आजू–बाजू देखे नाक की सीध में चले चलते है–– किसी को ध्वस्त करते और किसी को ऊर्ध्व–बाहु महान घोषित करते ।..... साहित्य में भी उन्होंने यही किया है । पंत को ध्वस्त और निराला को महान.....घोषित करके ही दम लिया ।.....

प्रभुदयाल मिश्र– मूल प्रश्न जो बना रहा है, वह यह है कि रामविलास शर्मा जी में यह किताब लिखते हुए क्या कुछ परिवर्तन आया या वे वहीं हैं, जहॉ थे.....रहे हैं ?

धनंजय वर्मा– परिवर्तन तो मुझे बहुत बड़ा लग रहा है । वे मार्क्सवादी से सांस्कृतिक राष्ट्रवादी हो गए हैं । यह सबसे बड़ा परिवर्तन है । मेरा तो सुझाव है कि भाजपा और आर0एस0एस0 को, विश्व हिन्दू परिषद् और बजरंग दल को अपनी पत्र–पत्रिकाओं में इस पुस्तक को सीरयालाइज करके फिर छाप देना चाहिए । मुझे लगता है इसे हाथों–हाथ अब उठा लेने के पीछे भी मकसद यही है कि यह सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का मार्क्सवादी औचित्य सिद्ध कर रही है ।

प्रभुदयाल मिश्र– एक अर्थ में हम यह भी तो कह सकते हैं कि रामविलास जी में यह पुस्तक लिखते हुए कोई परिवर्तन नहीं आया । वे मार्क्सवादी तर्क पर इसमें अन्ततः योरोपीय साम्राज्यवाद को ही तो कोस रहे है.......

पयोधि– आप सब यहॉ आए, इतनी महत्वपूर्ण चर्चा में आप लोगों ने हिस्सेदारी की । बहुत गम्भीर विचार–विमर्श यहॉ हुआ । इसके लिए मैं आप सभी का आभार व्यक्त करता हूॅ ।

––––